LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

गीता परिवार
॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 7: ज्ञानविज्ञानयोग

1/3 (श्लोक 1-10), शनिवार, 21 सितंबर 2024

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/KRwS28xZQQk

अपरा और परा प्रकृतियों का स्वरूप

देश भक्ति गीत, श्रीहनुमान चालीसा का पाठ, मङ्गलाचरण, गुरु वन्दना और दीप प्रज्वलन के साथ आज के सत्र का शुभारम्भ किया गया। भगवद्गीता प्रत्यक्ष रूप से श्रीभगवान के मुखारविन्द से प्रवाहित ज्ञान की धारा है। समराङ्गण में जब अर्जुन हतोत्साहित हो गए। उनका उत्साह बढ़ाने के लिए, उनका मनोबल बढ़ाने के लिए, उन्हें कर्तव्य पथ पर अग्रसर करने के लिए यह शाश्वत ज्ञान श्रीभगवान के मुखारविन्द से प्रवाहित हुआ। इस शाश्वत ज्ञान के अनेक विभाग हैं। इस अध्याय में श्रीभगवान् ने अन्तरङ्ग ज्ञान का रहस्य खोल दिया है। ज्ञानेश्वर जी महाराज ने आलन्दी में अपनी आयु के बाईसवें वर्ष में संजीवन समाधि ली। उसके पूर्व उन्होंने भगवद्गीता पर भाष्य करते हुए नौ हजार ओवियों से युक्त श्री ज्ञानेश्वरी अपने मुख से प्रवाहित की। अपने सद्गुरु के आशीर्वाद से गीता जी की महती (महत्व) गाते हुए वे कहते हैं-

कीं गीता हे सप्तशती। मंत्रप्रतिपाद्य भगवती।
मोहमहिषा मुक्ति। आनंदली असे ॥

गीता सप्तशती है। सात सौ श्लोकों की भगवद्गीता सप्तशती है। जिस प्रकार माँ जगदम्बा की स्तुति सप्तशती के माध्यम से गाई गई है। ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं जिस प्रकार माँ दुर्गा महिषासुर का वध करती हैं। उसी प्रकार भगवद्गीता मोह रूपी महिषासुर का वध करती हैं। जैसे ही मनुष्य के मन का मोह शिथिल होने लगता है संसार के प्रति उसके जीवन में आनन्द का मार्ग प्रस्फुटित होता है। यह भगवद्गीता जी हमें उस आनन्दमयी मार्ग की ओर ले जाती हैं।

7.1

श्रीभगवानुवाच
मय्यासक्तमनाः(फ्) पार्थ, योगं(म्) युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं(म्) समग्रं(म्) मां(म्), यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥1॥

श्रीभगवान् बोले - हे पृथानन्दन ! मुझमें आसक्त मनवाला, मेरे आश्रित होकर योग का अभ्यास करता हुआ (तू) मेरे (जिस) समग्र रूप को निःसन्देह जिस प्रकार से जानेगा, उसको (उसी प्रकार से) सुन।

विवेचन:- इस अध्याय में श्रीभगवान् ने अपना समग्र ज्ञान अर्जुन को बताना प्रारम्भ किया जो कि नवें अध्याय में पूर्ण हुआ। हे पार्थ! परमात्मा में एकाकर होते हुए परमात्मा के आश्रय से जुड़ते हैं। मय्यासक्त अर्थात् मुझ परमात्मा में आसक्त होकर, परमात्मा से निरन्तर अनन्य प्रीति रखते हैं। मुझ में एकाकार होकर, श्रीभगवान् के आश्रय से जो परमात्मा से निरन्तर योग करते हैं। योग अर्थात् जुड़ना। चाहे शरीर कोई भी कार्य करता रहे, इन्द्रियाँ कोई भी कार्य करती रहें, मन ईश्वर के साथ जुड़ा रहे। हम पूजा करते हैं, पाठ करते हैं, भक्ति करते हैं परन्तु मन कहीं और होता है। विशेष बात यह है कि जहाँ मन होता है वहीं हम होते हैं।

तत्रात्मा यत्र त्वयी मन:

हम कोई भी काम करे , मन में निरन्तर श्रीभगवान् का स्मरण बना रहे। जब हम दृढ़ निश्चय से श्रीभगवान् में आसक्त हो, उनका आश्रय लेंगे, तो नि:सन्देह निर्बाध रूप से उनका ज्ञान प्राप्त करेंगे। श्रीभगवान् कहते हैं- हे पार्थ! तुम इस ज्ञान को कैसे प्राप्त कर सकते हो सुनो। अन्तरङ्ग में उस परमात्मा के प्रेम में निरन्तर बहते रहना, श्रीभगवान् में आसक्ति कहलाती है। परम पूज्य स्वामी जी महाराज प्रायः गीता साधना शिविर में कहते हैं हम पूरी भगवद्गीता पढ़े या न पढ़े। इस अध्याय की पहली पङ्क्ति का चिन्तन मनन कर लिया, उसे समझ लिया और अपने जीवन में उतार लिया तो सम्पूर्ण गीता समझ में आ गयी। साधन कौन सा परमात्मा की भक्ति का। परमात्मा के आश्रय से तो तुम परमात्मा का समग्रता से ज्ञान प्राप्त करोगे। हमने श्रीभगवान् की अनेक लीलाओं, अनेक अवतारों का वर्णन पढ़ा है, सुना हैं। श्रीकृष्ण अवतार, श्रीराम अवतार। यह सारे अवतार जो परब्रह्म परमात्मा के हैं। क्या कभी हमें इनसे उनका समग्रता का ज्ञान होता है। हमारा ज्ञान परमात्मा के प्रति किस प्रकार होता है।

उसका एक सुन्दर उदाहरण-

एक बार चार अन्धे व्यक्तियों ने हाथी को हाथों से स्पर्श किया और अपने अनुभव के अनुसार उसका वर्णन करने लगे। जिसके हाथ ने हाथी के पेट का स्पर्श किया उसने कहा हाथी नगाड़े जैसा है। जिसके हाथ ने पूँछ का स्पर्श किया उसने कहा हाथी साँप जैसा है। जिसने पैर का स्पर्श किया उसने कहा हाथी खम्बे जैसा है। जिसने सूँड़ का स्पर्श किया वह कुछ और वर्णन कर रहा है। उस समय जो व्यक्ति देख सकता था वहाँ पर आया। उसने कहा जो तुम वर्णन कर रहे हो वह हाथी के एक-एक अङ्ग का वर्णन है। समग्र वर्णन नहीं है। हाथी कैसा है वह जान सकता है, जिसके पास दृष्टि है। ज्ञान की दृष्टि जिसके पास हो, वह परमात्मा को समग्रता से बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के जान सकता है।

श्रीभगवान् कहते हैं, उस परब्रह्म परमात्मा को कैसे जाना जा सकता है, यह ज्ञान हे अर्जुन! मैं तुम्हें दूँगा। उसके लिए क्या प्रयास करना है वह बताऊँगा। परमात्मा के आश्रय से साधना करना। मन में जो प्रेम उनके प्रति हो रहा है वह उन्हीं की कृपा से, भक्ति भी उन्हीं के कारण है। उसका अहङ्कार भी त्यागना। किसी और का, संसार का आश्रय न लेना।

द्रौपदी के चीर हरण के प्रसङ्ग को हम सभी ने सुना है। जब युधिष्ठिर द्युतक्रीड़ा में द्रौपदी को हार गए और दुर्योधन के कहने पर दु:शासन द्वारा द्रौपदी के केश पकड़ते हुए उन्हें सभा में लाया गया। कर्ण ने द्रौपदी को वेश्या कह कर वस्त्र हरण की बात कही, दु:शासन ने जैसे ही द्रौपदी के वस्त्र को हाथ लगाया, द्रौपदी रक्षा के लिए सभी से गुहार लगाने लगी। भीष्म पितामह, धृतराष्ट्र, आचार्य द्रोण, आचार्य कृपाचार्य, अपने पतियों की ओर, सभा के सभी वृद्धजनों की ओर, परन्तु किसी ने भी उन्हें चीरहरण से बचाया नहीं। द्रौपदी ने अन्त में सारे आश्रय छोड़कर, त्यागकर आर्द्रता से श्रीभगवान् को पुकारा- हे केशव! मेरी रक्षा कीजिए। तुरन्त वहाँ पर श्रीभगवान् का वस्त्र अवतरित हुआ और दु:शासन की हार हुई। स्वामी जी कहते हैं मन से ईश्वर को हर पल याद करना यह सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। मन से ईश्वर के साथ जुड़े रहना बड़ा कठिन होता है। जिस साधक को उस परमपिता परमात्मा को समग्रता से जानने की इच्छा हो गई, उसके लिए क्या साधन हैं? वह इस श्लोक की पहली पंक्ति में ही आ गया।

7.2

ज्ञानं(न्) तेऽहं(म्) सविज्ञानम्, इदं(म्) वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्, ज्ञातव्यमवशिष्यते॥2॥

तेरे लिये मैं यह विज्ञान सहित ज्ञान सम्पूर्णता से कहूँगा, जिसको जानने के बाद फिर इस विषय में जानने योग्य अन्य (कुछ भी) शेष नहीं रहेगा।

विवेचन:- परब्रह्म परमात्मा, श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से बोल रहे हैं। उन्हें योगेश्वर कृष्ण कहा गया है। हे अर्जुन! मैं अब विज्ञानसहित ज्ञान बताने वाला हूँ। सम्पूर्णता से, कोई संशय न रह जाए ऐसा ज्ञान, मैं तुम्हें बताऊँगा। वह ज्ञान प्राप्त करने के बाद क्या होगा? इस संसार में फिर से कुछ अन्य ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होगी। जीव, जगत् और जगदीश्वर का सम्बन्ध जान लिया तो उसके बाद कुछ और जानने की आवश्यकता ही नहीं है। यहाँ श्रीभगवान् ने दो शब्द ज्ञान और विज्ञान का प्रयोग किया है। यही बात श्रीभगवान् ने नवें अध्याय में विस्तार से बताई है।

"इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।

एक ज्ञान है, सामान्य ज्ञान। जो हम चर्म चक्षु से प्राप्त करते हैं। विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान, सम्पूर्णता का सूक्ष्म ज्ञान। जैसे जब हम एक पुष्प देखते हैं, उसका रंग किस प्रकार है। किन्तु जब हम उसको माइक्रोस्कोप से देखते हैं तो उसका और विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। इसी तरह कोई, बिजली का ज्ञान, एटम, परमाणु का ज्ञान, इलेक्ट्रिकल इंजीनियर, जीव विज्ञान इस प्रकार का विशेष ज्ञान। उदाहरण के लिए हमने रसगुल्ला देखा, वह सफेद होता है। चाशनी में डूबा हुआ होता है। मीठा होता है। तो यह हुआ ज्ञान और जब हमने रसगुल्ला खाया। उसकी जो मिठास की अनुभूति का ज्ञान, वह है विज्ञान।

चतुर्थ अध्याय में श्रीभगवान् कहते हैं- **श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम्।**

हमें पता है कि हममें कोई चैतन्य तत्त्व है, जो हमारे इस देह को शरीर को चलाता है। सूक्ष्म ज्ञान, जो जड़ और चेतन का ज्ञान है । जड़ और चेतन के सहयोग से, संसार का कार्य चलता है। विज्ञान में भी हम कहते हैं, मैटर एंड एनर्जी, जबकि वैज्ञानिक कहते हैं, मैटर में भी एनर्जी है। विज्ञान कहता है पहले स्थूल फिर सूक्ष्म, E= mc2 इसका परस्पर सम्बन्ध आइंस्टीन भी बताते हैं।

हम जड़ के प्रति इतने आकर्षित हो जाते हैं कि उसमें जो सूक्ष्म चेतन है उसे हम नहीं जानते। वही हमारा स्वरूप है। उसकी अनुभूति हमें नहीं आती। भगवद्गीता के परिप्रेक्ष्य में ज्ञान का महत्वपूर्ण अर्थ है आत्मज्ञान, अपने स्वरूप का ज्ञान। दूसरा इस संसार के प्रपञ्च का ज्ञान, जो हम उपजीविका के लिए प्राप्त करते हैं। डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, वकील यह सब ज्ञान लेते-लेते हम अपने स्वयं का ज्ञान भूल जाते हैं। तेरहवें अध्याय में श्रीभगवान् कहते हैं कि अध्यात्म ज्ञान ही ज्ञान है, पर यहाँ पर ऐसा नहीं कहा।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं -
अर्जुना तया नांव ज्ञान। येर प्रपंचु हें विज्ञान।
तेथ सत्यबुद्धि तें अज्ञान। हेंही जाण॥

प्रपञ्च (संसार) का ज्ञान प्राप्त करते हुए उसी को सत्य समझना।

संसरति इति संसारः **जो परिवर्तनशील है वही संसार है।** परिवर्तनशील संसार का आधार तो अपरिवर्तनशील है। उसको न समझना यह अज्ञान है। उस ज्ञान को प्राप्त करने का हम प्रयास नहीं करते जो ज्ञान भगवद्गीता के माध्यम से हमारे जीवन को आलोकित करता है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं-
ऐसा प्रतीत होता है की श्रीभगवान् ने अर्जुन के मन का भाव जान लिया है। वे कहते हैं कि हे अर्जुन! जब तुम्हें स्वयं का ही ज्ञान

प्राप्त करना है। मैं वही तो बता रहा हूँ। अर्जुन युद्धभूमि छोड़कर हिमालय या कन्दराओं में जाकर स्वयं का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। श्रीभगवान् अर्जुन को वहाँ जाने की अनुमति नहीं देते हैं। क्योंकि वह ज्ञान प्राप्त करने के पहले योग्यता, क्षमता प्राप्त करनी होती है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं, परमात्मा ने पहले अज्ञान की, प्रपञ्च (संसार) के ज्ञान की बात कही। तुम्हारे मन में आएगा कि फिर विज्ञान की क्या आवश्यकता है, छोड़ दूँ यह प्रपञ्च का ज्ञान? ऐसा नहीं है। पहले अपने भौतिक जीवन की उन्नति के लिए संसार का ज्ञान प्राप्त करना होगा। तभी संसार तुम्हें मानेगा नहीं तो कहेगा तुम विफल थे, इसलिये संसार छोड़कर चले गए। पहले जीवन में कोई डिग्री, कुछ उन्नति हासिल करनी पड़ेगी उसे अभ्युदय कहते हैं। नैतिकता के मार्ग में रहते हुए, भौतिक प्रगति के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रगति कैसे प्राप्त की जाती है जानने हेतु यह सर्वोच्च, महत्वपूर्ण ग्रन्थ है भगवद्गीता।

श्रीभगवान् ने ऐसा महाविद्यालय खोल लिया जहाँ पर इस बात का, समग्रता का ज्ञान दिया जा रहा है तो वहाँ तो हजारों लोग आएँगें। ऐसा भाव अर्जुन के मन में हुआ होगा। कोरोना काल के समय से हम लोग गीता अध्ययन में जुड़े, श्रेयस्कर प्राप्त कर रहे हैं। अभ्युदय प्राप्त कर रहे हैं। पर पहले यह बात नहीं थी। नागपुर में कक्षा में कुछ गिने चुने लोग ही आते थे। श्रीभगवान् कहते हैं- हे अर्जुन! तुम्हारी यह अवधारणा है न कि मैं अशेषता बताने वाला हूँ तो बहुत सारे लोग आएँगे। ऐसा नहीं होता है।

7.3

मनुष्याणां(म्) सहस्रेषु, कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां(ङ्), कश्चिन्मां(म्) वेत्ति तत्त्वतः॥3॥

हजारों मनुष्यों में कोई (एक) सिद्धि (कल्याण) के लिये यत्न करता है (और) (उन) यत्न करने वाले सिद्धों (मुक्त पुरुषों) में कोई (एक) ही मुझे यथार्थ रूप से जानता है।

विवेचन:- श्रीभगवान् सबके लिए साध्य नहीं होते हैं, साधन होते हैं-हमारे प्रपञ्चों (संसार) में, आने वाले संकटों को दूर करने के लिए, हमारे भोगों की पूर्ति के लिए। यह पद-प्रतिष्ठा मान-सम्मान, विद्यार्थी को परीक्षा में अच्छे अंक चाहिए। मन की इच्छा की पूर्तियों के लिए श्रीभगवान् की पूजा करना, आराधना करना। उनके लिए श्रीभगवान् साधन हैं। जब श्रीभगवान् साध्य होंगे तब उस ज्ञान का उदय होगा। सहस्रों व्यक्तियों में से कोई एक ऐसा होता है जो श्रीभगवान् को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। उनमें से भी कोई एक मुझ परमाात्मा को तत्त्व से जान पाता है। समग्रता से जान पाता है। परमात्मा परम तत्व हैं जिसकी शक्ति से यह संसार चलता है। जैसे हम कहते हैं- मातृत्व माता का स्वभाव, बालपन उस बालक का स्वभाव।

एक प्रसङ्ग नारद जी के जीवन का- श्रीभगवान् की भक्ति का प्रसार करने के लिए नारदजी धरती पर नारायण-नारायण का स्मरण करते हुए विचरण करते हैं। एक गाँव में लोगों के मन में भक्ति का रस ऐसे घोल दिया कि सब श्रीभगवान् नाम का जाप करने लगे। नारद जी बड़े प्रसन्न हुए।

नारदजी श्रीभगवान् से कहते हैं, एक गाँव ऐसा है, जो भक्ति के रस में डूब चुका है। श्रीभगवान् जी बोले ठीक है, मैं उन्हें दर्शन देना चाहूँगा। पर मैं दूर खड़ा रहूँगा। तुम सारे गाँव वालों को लेकर आ जाओ। नारद जी ने यह बात गाँव के लोगों को बताई कि भगवान तुम्हें दर्शन देने के लिए आ गए हैं। सारा गाँव आनन्दित हो गया। नारायण-नारायण कहते हुए नारद जी आगे आगे और सारे गाँव के लोग पीछे-पीछे। श्रीभगवान् ने अपनी माया रची और आकाशवाणी हुई। पास के गाँव में चाँदी के सिक्कों की वर्षा हो रही है। कुछ लोगों ने विचार किया कि श्रीभगवान् के दर्शन तो बाद में भी हो जाएँगे, चाँदी के सिक्कों की वर्षा बाद में हो या न हो, तो वे लोग उस गाँव की ओर चले गए। फिर आकाशवाणी हुई कि अब सोने के सिक्कों की वर्षा हो रही है उनमें से कुछ लोग और चले गए। फिर रत्नों की वर्षा होने के आकाशवाणी हुई। अब तो सारे के सारे लोग उस और चले गए। जैसे ही नारद जी श्रीभगवान् तक पहुँचे और कहा ये सारे लोग आपके दर्शन के लिए आ गए हैं। श्रीभगवान् बोले मुझे तो कोई नहीं दिख रहा। नारदजी ने पीछे मुड़कर देखा तो कोई नहीं था। संसार हमें ऐसा उलझा देता है कि पहले हम सारे भौतिक सुख भोगना चाहते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं मन्दिरों में जो भीड़ होती है वह मुझसे माँगने वालों की होती है। मेरे लिए नहीं होती है।

7.4

भूमिरापोऽनलो वायुः(ख्), खं(म्) मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं(म्) मे, भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥4॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश - (ये पंच महाभूत) और मन, बुद्धि तथा अहंकार - इस प्रकार यह आठ प्रकार के भेदों वाली मेरी अपरा प्रकृति है। हे महाबाहो ! इस अपरा प्रकृति से भिन्न जीवरूप बनी हुई मेरी परा प्रकृति को जान, जिसके द्वारा यह जगत धारण किया जाता है। (7.4-7.5)

विवेचन:-श्रीभगवान् पहले पञ्च भूतों से बनी सृष्टि का वर्णन करते हैं। श्रीभगवान् स्थूल से कैसे सूक्ष्म की ओर जाते हैं। इस पृथ्वी के पञ्च भूतों का वर्णन करते हैं। भूमि, अप् (जल) अग्नि, वायु,आकाश, और मन, बुद्धि और अहङ्कार, यह अष्टधा प्रकृति है।

प्रकृति अर्थात् सृष्टि, जड़, चेतन के सहयोग से सारा कार्य करती है। श्रीभगवान् की प्रकृति कार्य करती है उसमें यह पञ्च महाभूत हैं। भूमि अर्थात् जड़, अप् अर्थात् जल, तेज अर्थात् अग्नि, अनल अर्थात् वायु। आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार यह सब जड़ प्रकृति के ही घटक हैं। परा प्रकृति, जो यह जीव है और अपरा प्रकृति जो यह सृष्टि है। यह मेज़ जड़ है लेकिन इसमें भी एटम, इलेक्ट्रोंस, प्रोटोंस होते हैं।

इसमें ऊर्जा भी है, चेतन भी है, और जड़ भी है। स्थूल भी है और सूक्ष्म जो नहीं दिखता है वह चैतन्य। अपरा प्रकृति के आठ घटक और उसके साथ परा प्रकृति भी है।

7.5

अपरेयमितस्त्वन्यां(म्), प्रकृतिं(म्) विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां(म्) महाबाहो, ययेदं(न्) धार्यते जगत्॥5॥

विवेचन:- श्रीभगवान् कहते हैं इस अपरा प्रकृति से भिन्न परा प्रकृति है मेरी। जिसके कारण इस जगत् को धारण किया जाता है। वह चेतना शक्ति है। हर व्यक्ति, हर कण में वह मेरी परा शक्ति है। एक स्थूल और एक सूक्ष्म। पृथ्वी ने हमें धारण किया। पृथ्वी को सूर्य भगवान ने धारण किया। पृथ्वी ने हमें गुरुत्वाकर्षण के कारण धारण किया है। यह धारणा शक्ति हर एक व्यक्ति में है। यही मेरी परा प्रकृति है। श्रीभगवान् भी वर्णन करते-करते स्थूल से सूक्ष्म की ओर आते हैं। स्थूल अर्थात् पृथ्वी अर्थात जड़। पृथ्वी तत्व जड़ है जबकि जल तत्व सूक्ष्म है, प्रकाश, वायु से भी सूक्ष्म है और इन सबसे सूक्ष्म है आकाश। अब आता है मन, जो इन सबसे सूक्ष्म है। बुद्धि, मन से भी सूक्ष्म है और अहङ्कार सबसे सूक्ष्म है, व्यापक है। इस प्रकार प्रकृति सूक्ष्मता की ओर जाती है। स्थूल तो व्याप्त है जबकि सूक्ष्म व्यापक होता है। इस प्रकार प्रकृति की व्यापकता बढ़ती जाती है। इसमें सारा प्रपञ्च ज्ञान आ गया। विज्ञान में पूरा ज्ञान आ गया। फिजिक्स, केमिस्ट्री, गणित- इनको हम (साइंस) विज्ञान को समझते हैं। कला की शाखाएं जैसे भूमि, अर्थात् फिजिक्स भौतिक शास्त्र आ गया। जल, रसायन, रसायन शास्त्र केमिस्ट्री। अनल, तेज इसमें विद्युत शास्त्र आ गया। इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग आ गई। वायु विज्ञान जिसमें सभी सूक्ष्म तरंगे आती हैं, जैसे संगीत, ध्वनियन्त्र आदि। आकाश तत्व का खगोल शास्त्र तथा इंटरनेट w.w.w से सम्बन्ध है। जिसके कारण हम एक दूसरे से सम्पर्क कर सकते हैं। मन से साहित्य का निर्माण होता है। मन से ग्रन्थों की निर्मिति होती है। जैसे ऋषि मुनियों ने ग्रन्थों की निर्मिति की। भाषा इसमें आ गई। जैसा मन वैसा साहित्य। बुद्धि से गणित, तर्क करना, ज्ञान सीखना इत्यादि। सभी संशोधन इसी बुद्धि तत्व पर आधारित है। अब आता है अहङ्कार अर्थात् **मैं पन,** जो हमें बचपन से, हमें नाम से मिला। स्थूल से सूक्ष्म की ओर इससे ही राज कार्य, सामाजिक कार्यक्रम इत्यादि सम्पादित किए जाते हैं इसलिये ये सभी प्रपञ्च का विज्ञान है। यह प्रपञ्च का विज्ञान अपरा प्रकृति द्वारा निर्मित होता है और जीव का ज्ञान परा प्रकृति से।

7.6

एतद्योनीनि भूतानि, सर्वाणीत्युपधारय।
अहं(ङ्) कृत्स्नस्य जगतः(फ्), प्रभवः(फ्) प्रलयस्तथा॥6॥

सम्पूर्ण प्राणियों के (उत्पन्न होने में) अपरा और परा - इन दोनों प्रकृतियों का संयोग ही कारण है - ऐसा तुम समझो। मैं सम्पूर्ण जगत का प्रभव तथा प्रलय हूँ।

विवेचन:-पाँच महाभूतों से बनता है वह भूत। भवति जिसका निर्माण होता है। स्वयंभू नहीं है। दो प्रकार की प्रकृतियों के सहयोग से निर्माण, निर्मित होते हैं। प्रभव अर्थात् उत्पत्ति करने वाला। प्रलय अर्थात् विलय करने वाला। जैसे समुद्र में लहर उठती है वह थोड़ी देर के लिए उसकी स्थिति होती है। विलीन होती है सागर में। इसी तरह श्रीभगवान् सारे जगत् का निर्माण करते हैं।

ज - उत्पत्ति या स्थिति
ग- गच्छति या प्रलय
त- तिष्ठति या स्थिति
उत्पत्ति, स्थिति और लय। स्थित गुरुत्वाकर्षण के कारण। इसी के कारण रात दिन, प्रकाश हमें मिलता हैं।

क्या धरा हमने बनाई, क्या बुना हमने गगन,
क्या हमारी ही वज़ह से बह रहा सुरभित पवन?
या अगन के हम हैं स्वामी, नियन्ता जलधार के,
या जगत् के सूत्रधार नियामक संसार के।

न हमने धरा बनाई, न हम बीज बनाते हैं। न वह जल जिससे वनस्पति उगते हैं। जिसके कारण हमारा जीवन चलता है उनमें से कोई भी वस्तु हम नहीं बनाते न वायु, न जल। श्रीभगवान् कहते हैं, मैं ही सृष्टि के उत्पन्न और प्रलय का कारण हूँ। आकाश में सारे ग्रह सूर्य भगवान की परिक्रमा करते हैं, क्या गति होगी। लेकिन कोई भी एक दूसरे से टकराता नहीं है। यह परिवर्तनशील संसार किसी अपरिवर्तनीय पर टिका है। जैसे स्क्रीन पर दृश्य बदलते रहते है लेकिन स्क्रीन स्थिर रहता है। जिस स्क्रीन के आधार से हम दृश्य देखते हैं वह स्क्रीन हमें नहीं दिखाई देती। यदि दो ट्रेन तीव्र गति से चल रही है और एक व्यक्ति खिड़की से बाहर देखे, तो उसे लगेगा दोनों ट्रेन स्थिर है। क्योंकि दोनों ट्रेन समान गति से चल रही है। लेकिन स्टेशन, खम्बा या वृक्ष देखकर प्रतीत होता है कि एक ट्रेन स्थिर है। स्थिरता के कारण ही हमें अस्थिरता या परिवर्तनशीलता समझ में आती है। वह अव्यय, अविनाशी, परमात्मा इस सृष्टि को इस रूप से धारण किए हुए हैं।

7.7

मत्तः(फ्) परतरं(न्) नान्यत्, किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं(म्) प्रोतं(म्), सूत्रे मणिगणा इव॥7॥

इसलिये हे धनञ्जय ! मेरे सिवाय (इस जगत का) दूसरा कोई किंचिन्मात्र भी (कारण तथा कार्य) नहीं है। (जैसे सूत की) मणियाँ सूत के धागे में (पिरोयी हुई होती हैं), ऐसे ही यह सम्पूर्ण जगत मेरे में (ही) ओत-प्रोत है।

विवेचन:- श्रीभगवान् कहते हैं, हे धनञ्जय! इस सृष्टि में परमात्मा से भिन्न, अन्यत्र कोई भी अधिष्ठान, कारण नहीं है। परमात्मा जो अपरिवर्तनशील हैं उन्हीं के द्वारा यह परिवर्तनशील संसार चल रहा है। सूत्र में, जिस तरह धागे में मोती पिरोए जाते हैं और माला बनती है। इस तरह मैंने इस संसार में सबको आत्मा रूपी चेतन शक्ति से जोड़ रखा है। अन्दर से हम सभी उस परमात्मा रूपी चेतन शक्ति से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं कि--
सुवर्णाचे मणि केले। ते सोन्याचे सुरती बोविले।
तैसे म्यां जग धारीलें। सबाह्याभ्यांतरी।।

अर्थात् सोने की मणियों को सोने के ही तार में पिरोया गया है। उसी प्रकार यह संसार भी परमात्मा से ही बना हुआ है और परमात्म तत्त्व ही पिरोया गया है। परमात्मा कैसे हैं, यह भगवान आगे बताते हैं?

7.8

रसोऽहमप्सु कौन्तेय, प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः(स्) सर्ववेदेषु, शब्दः(ख्) खे पौरुषं(न्) नृषु॥8॥

हे कुन्तीनन्दन! जलों में रस मैं हूँ, चन्द्रमा और सूर्य में प्रभा (प्रकाश) मैं हूँ, सम्पूर्ण वेदों में प्रणव (ओंकार), आकाश में शब्द (और) मनुष्यों में पुरुषार्थ (मैं हूँ)।

विवेचन:- हर कण में परमात्मा हैं। हे कौन्तेय, यहाँ पर श्रीभगवान् अपनी कुछ विभूतियांँ बताते हैं, दसवें अध्याय का आरम्भ यहीं से करते हैं। पानी में मैं रस हूँ। चन्द्रमा की आनन्ददायक रोशनी, सूर्य का प्रकाश मैं हूँ। वेदों में क्या सार है, सभी वेदों में, मैं ओंकार हूँ। प्रणव श्रीभगवान् का एक अक्षर नाम, वह मैं हूँ। आकाश में शब्द मैं हूँ। Sound waves, शब्द ध्वनि आकाश में रहती है। पुरुषों में, मैं पुरुषत्व हूँ। इसका अर्थ है सभी वस्तुओं में सार रूप में ईश्वर ही हैं। जैसे बेसन से हमने पकोड़े, सेंव, बर्फी बनाई उनके स्वाद भिन्न-भिन्न होंगे लेकिन मूल में बेसन ही है। व्यंजनों में विशेष क्या है प्रोटीन। जैसे स्वर्ण के गहने बनाए, उसमें महत्वपूर्ण है स्वर्ण। हार, कङ्गन, कर्णफूल, अँगूठी आदि में मूल तत्व स्वर्ण ही है।

7.9

पुण्यो गन्धः(फ्) पृथिव्यां(ञ्) च, तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं(म्) सर्वभूतेषु, तपश्चास्मि तपस्विषु॥9॥

पृथ्वी में पवित्र गन्ध (मैं हूँ), और अग्नि में तेज मैं हूँ तथा सम्पूर्ण प्राणियों में जीवनी शक्ति (मैं हूँ) और तपस्वियों में तपस्या मैं हूँ।

विवेचन:- पृथ्वी अर्थात् जड़ पदार्थ में जो सार तत्त्व होता है, उसकी पवित्र गन्ध होती है। उसी से वह जाना जाता है। प्रशिक्षित श्वान गन्ध से अपराधी को पकड़ लेते हैं । इस सृष्टि में जो तेज है अर्थात् अग्नि में जो तेज है, वह भी मैं ही हूँ।। सभी भूतों में जो चेतना है, जीव है वह मैं हूँ। तपस्वियों का तप भी मैं ही हूँ। मुख्य सार जो है, वह परमात्मा हैं।

7.10

बीजं(म्) मां(म्) सर्वभूतानां(म्), विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि, तेजस्तेजस्विनामहम्॥10॥

हे पृथानन्दन ! सम्पूर्ण प्राणियों का अनादि बीज मुझे जान। बुद्धिमानों में बुद्धि (और) तेजस्वियों में तेज मैं हूँ।

विवेचन:- श्रीभगवान् कहते हैं, हे पार्थ! सभी भूत मात्राओं का सनातन बीज मैं ही हूँ, तपस्वियों का तप भी मैं हूँ । बुद्धिमानों में बुद्धि मैं हूँ। तेजो का तेज मैं हूँ। कारण परमात्मा है।

ज्ञानेश्वर महाराज जी कहते हैं-
कां बीजचि जाहलें तरु,
अथवा भांगारचि अळंकारु।
तैसा मज एकाचा विस्तारु,
तें हें जग ॥

बीज का तरु हो जाता है और स्वर्ण के अलङ्कार बन जाते हैं। जब अलङ्कार बन जाते हैं तो स्वर्ण का लोप हो जाता है। जब वृक्ष बन जाता है तो बीज का लोप हो जाता है। जिस आधार के कारण बिजली बनती है, उसका भी विद्युत प्रवाहित होने पर लोप हो

जाता है। ऐसे ही परमात्मा हैं। सृष्टि का कार्य परमात्मा के द्वारा चलता है। इस तरह श्रीभगवान् भक्ति का कक्ष खोलते हैं और चार प्रकार की भक्ति का वर्णन आगे करते हैं। हम कौन सी श्रेणी के भक्त है यह अगले सत्र में देखेंगे। इसी के साथ इस गूढ़ विवेचन सत्र का समापन हुआ।

विचार - मंथन(प्रश्नोत्तरी):-

प्रश्नकर्ता : हंसा पटेल जी

प्रश्न : अपरा और परा प्रकृति के बारे में कुछ बताइए।

उत्तर : अपरा का अर्थ है जड़ प्रकृति और परा का अर्थ है चेतन प्रकृति। मन का शरीर से जुड़ना स्थूल,जड़ प्रकृति जाना जाता है । जिससे सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है वह परा अर्थात् चेतन प्रकृति है।

प्रश्नकर्ता : जयंती प्रसाद जी

प्रश्न : पितृ पक्ष में विशेष रूप से सातवें अध्याय को क्यों पढ़ा जाता है?

उत्तर : पितृ पक्ष में सातवें अध्याय के विशेष पठन के विषय में अधिक सुनने में नहीं आया है। परन्तु गीता जी का पठन कभी भी किया जा सकता है। कोई भी श्लोक,अध्याय का पठन, प्रभावी माना गया है।

प्रश्नकर्ता: सीमा जी

प्रश्न: आठ प्रकार के भेदों वाली अपरा प्रकृति में अहङ्कार सबसे सूक्ष्म कैसे हुआ ?

उत्तर: अहङ्कार इन सभी प्रकार के भेदों में सबसे सूक्ष्म माना जाता है क्योंकि यह अत्यधिक व्यापक है और पकड़ में नहीं आता।

।। ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||